# कहानी के आर-पार

प्रेमपाल शर्मा

# कहानी के आर-पार

प्रभा को मैंने इतना प्रसन्न कभी नहीं देखा। हर करवट हँसी की हिलोर।

https://www.hindiadda.com/kahani-ke-aar-paar/

हो भी क्यों नहीं। प्रेम-कहानी और वह भी किसी जानने वाले की जानने को मिले। साबुत की साबुत-एक बार में ही!

कई दिनों से गुनगुनाती हँसी जब चाहे उनके चेहरे पर आती है और घूम-घूमकर वहीं बनी रहती है, मानो कोई खजाना हाथ लग गया हो।

उलट-पलटकर देखती, कभी करीने से रख देती और कभी खुद ही खुद बताने लगतीं।

'मिसेज सक्सेना कह रही थीं - एक हरा-सा रूमाल कभी इस कोट की जेब में, कभी उस कोट की। सारे कपड़ों को धोने के लिए दे देते। ये रूमाल कभी नहीं निकला। ऐसा गंदा-सा, बदबू मार रहा था। एक दिन कोट की जेब में देखा तो मैंने कपड़े धोने की मशीन में डाल दिया। ये बाहर से लौटे थे। आते ही कोट की जेब में हाथ डाला। वे इधर-उधर चक्कर लगाने लगे। मैंने कहा - बैठो तो शांति से। क्या हुआ? कोई सामान छूट गया? खो गया? बोले ही नहीं, कुछ।'

'है न मजेदार किस्सा! मेरी तो हँसी रोके नहीं रुक रही थी। पता नहीं क्यों आदमी इतना पागल हो जाता है।' किस्से के बीच प्रभा ने अपनी टिप्पणी जड़ी।

मैं चुपचाप मुस्कराता रहता हूँ, टुकड़े-टुकड़े को सोचता। ज्यादा कुरेदता भी नहीं, इसलिए भी कि बिना कुरेदे ही प्रभा बता रही है एक-एक विवरण और वह भी बार-बार, अलग-अलग कोणों से। और दूसरे इसलिए भी कि मेरी स्थिति भी तो ज्यादा अलग नहीं है। कभी-कभी प्रभा के चेहरे को भय से देखता हुआ भी - मेरी कहानी का जब इसे पता चलेगा तो सब हँसी फुर्र हो जाएगी। डंडा उठाकर मारने दौड़ेगी। बाप रे बाप! उसकी कहानी भी अंदर-अंदर इतनी दूर तक पहुँचेगी? दूसरों की प्रेम-कहानी गुदगुदाती है, अपनी कहर ढाती है।

प्रभा मनमर्जी टुकड़ा चुन लेती है सक्सेना साहब की प्रेम-कहानी से। 'एक दिन कहने लगे कि उसे बस उँगली-भर सिंदूर चाहिए। बोलो, कौशल्या! मैं शादी कर लूँ उससे? पाँच दिन तुम्हारे पास रह लिया करूँगा, दो दिन उसके पास...'

'यानी कि शनिवार, इतवार... छुट्टी प्रेमिका के साथ? ' हम दोनों ठठाकर हँसने लगे। हद है दीवानगी की!

'मिसेज कौशल्या सक्सेना बता रही थीं - मैंने कहा, अभी उठा अटैची और चल यहाँ से। तुझे शर्म नहीं आती। तू जा यहाँ से। सातों दिन वहीं रह। मैं देखती हूँ तू कैसे घर में घुसता है। तेरी पेंटिंग्स में मैं अभी दियासलाई लगाती हूँ।'

'डर गए बोले - तुम बोल कैसे रही हो? - मैंने कहा - बहुत सम्मान किया मैंने तुम्हारा। अब तू मेरा यह चंडी रूप भी देख ले - मैंने डंडा उठा लिया था। मेरे तो पैर में चोट लगी पड़ी है और ये मजनू इश्क में डूबे हुए हैं।'

'प्रभा! मेरे पैर में प्लास्टर चढ़ा हुआ था। सीढ़ी पर चढ़ते-चढ़ते फिसल गई थी। अब ये शरीर बूढ़ा हो रहा है। कोई बहाना चाहिए तकलीफ का और इन्हें इश्क सूझा उन्हीं दिनों। मैं भी सन्न कि कभी कोई मीठी बात नहीं। न पास बैठना। न हाल-चाल पूछना। खुद को जुकाम भी हो जाए तो हम रात-दिन सेवा में लगा दें। जब मुझे पता चला तो, प्रभा! क्या बाताऊँ, मन हुआ पहले तो इनसे निपटूँ और फिर उस डाइन का मुँह नोचूँ। मैं तो सैंतालिस की बूढ़ी हूँ और वो तैंतालीस की जवान बनी हुई है। तुम्हें अनुराग ने कुछ नहीं बताया? कुछ तो सुना होगा? ये बातें कहीं छिपती हैं, प्रभा।'

'मुझे लगता है, इन्हें भी नहीं पता। वरना जरूर बताते।'

'इन दोनों को बैठे रहने दो वहीं ड्राइंग रूम में। दोनों यार बहुत दिनों में मिले हैं। मैं इनकी चाय वहीं दे देती हूँ। हम ऊपर चलते हैं, तब पूरी बात बताती हूँ।'

'मिसेज सक्सेना मेरा हाथ पकड़कर ऊपर ले गईं।'

'अच्छा, इसीलिए आप घुसड़-पुसड़ में लगी थीं।' मैंने कहानी का गेयर बदला।

कहने लगीं, 'अनुराग को बताना नहीं। कोई अच्छी बात नहीं है, पर इन आदमियों की मति कब मारी जाए, इसलिए बता रही हूँ। जैसे ही खाना खत्म हो कॉर्डलैस फोन उठाएँ और इधर-उधर हो जाएँ। बच्चे अपनी-अपनी परीक्षा में डूबे थे। घंटों लगे रहते फोन पर। मैंने सोचा, मार्च नजदीक आ रहा है कुछ काम बढ़ जाता है इन दिनों। एक दिन देखा तो टायलेट में टेलीफोन लिए खड़े हैं। मैं बाहर से सुन रही थी - डार्लिंग, डार्लिंग... तब तक मेरी टाँग नहीं टूटी थी। अब मैं पूछूँ तो कैसे पूछूँ? कौन डार्लिंग हो गई? मैंने तो कभी इनके मुँह से ये सुना नहीं। हम तो सीधे मुँह बात को भी तरस जाते हैं।'

'कैसा लगता होगा सक्सेना साहब का इस उमर में 'डार्लिंग, डार्लिंग' कहना? तुम कह सकते हो किसी को?' प्रभा बीच-बीच में दिल्लगी के मूड में भी है।

मैं पूरे अभिनय में हूँ। कभी आँखें विस्फारित करता, कभी हँसी को रोकता, कभी अपने और मीरा के बीच चलती प्रेम-कहानी को आहिस्ता-आहिस्ता देखता, डरता और डूबता। मैं सिर को झटका देकर फिर सक्सेना साहब की कहानी पर ले गया। 'बच्चों को पता है?'

'पता क्यों नहीं होगा। वे बता रही थीं कि पहला संकेत तो बेटे ने ही दिया। इन्हें इलाहाबाद से लौटना था। कुछ काम की वजह से नहीं लौटे। प्रेमिका का फोन आने से पहले ही हाजिर - मिस्टर सक्सेना हैं? - बेटे ने बताया कि वो तो नहीं आए। आप कौन? फोन कट गया। ऐसा दो-तीन बार हुआ। गुड्डू बोला - मम्मी, एक फोन आता है, कोई लेडी आवाज होती है, लेकिन वो अपना नाम कभी नहीं बताती - अब गुड्डू कॉलेज में जाएँगे अगले साल, कुछ तो समझते ही होंगे। मैं भी डार्लिंग-डार्लिंग की आवाज सुन चुकी थी। हमने प्लान बनाया कि अब जैसे ही फोन आएगा, तुम कह देना होल्ड करो, अभी आते हैं पापा। फोन आया, गुड्डू ने होल्ड करने को कहा और मुझे पकड़ा दिया, मम्मी, यही फोन आता है। मैंने बात करनी चाही - अभी आते हैं, बाथरूम में हैं। आप कौन हैं? उसने फिर खट से रख दिया।'

'फिर**?**'

'अरे सुनो तो, क्या बताऊँ और क्या छोड़ूँ। इन्हें मलेरिया हो गया। ऐसे तमतमाते शरीर से भी फोन की कोशिश करते रहते। मैं दवा देकर रजाई उढ़ाकर उधर काम निपटाने चली जाती कि थोड़ी देर पसीना आ जाए, पर देखो तो उनकी बातें शुरू हो जातीं। एक रात तबीयत ज्यादा बिगड़ गई, सीने पर हाथ रखकर कराहे जाएँ - 'बहुत घबराहट हो रही है - मैं भी डर गई। कहीं कोई हार्ट की परेशानी तो नहीं है। मुँह पर पसीना। मेरा हाथ पकड़कर छाती पर रखकर कहें, कहो कि तुम रचना हो। कहो कि - मैं रचना हूँ - आँखें बंद। मैंने कहा - हाँ भाई मैं रचना हूँ। रचना हूँ। रचना तुम्हारी प्रेमिका...''

'मुझे इतनी जोर से हँसी आ रही थी कि देखने में भाई साहब कितने सीधे हैं और.. ये उमर, पचास से कम तो क्या होंगे।' प्रभा कहानी को एक तरफ रख हँसने लगी।

'हाँ, इतने तो होंगे।' मेरी रील भी खुल रही है समानांतर। रात में बड़बड़ाने की आदत तो मेरी भी है। माँ बताया करती थी कि रात में उठकर बैठ जाया करता था और दिन का पढ़ा हुआ, खेल के कंचे, कुश्ती की बातें दोहराने लगता था। पाइथागोरस, न्यूटन, अकबर, सुभाषचंद्र बोस। सुभाषचंद्र बोस के सपने तो अब भी आते हैं। कहीं ऐसा न हो कि मैं भी रात में मीरा-मीरा कहने लगूँ। मैंने पुष्टि चाही। 'मैं अब भी बड़बड़ाता हूँ रात में प्रभा?'

'मुझे तो पड़कर होश नहीं रहता। बड़बड़ाते ही होंगे, तभी तो बेटे में आए हैं ये लक्षण।' उसने मेरा प्रश्न एक तरफ सरका दिया, 'पहले उनकी बातें सुनो, बीच में अपना पुराण लेकर बैठ जाते हो।'

'...एक तरफ मैं छाती पर हाथ फेर रही हूँ रचना-रचना कहते, बेटा सिर दबा रहा था। वह बगल में ही तो लेटता है। लड़का समझेगा नहीं, पापा क्या कह रहे हैं? बेटी ने डॉक्टर को फोन किया। रात के दो बजे डॉक्टर साहब आए, उन्होंने दवा दी। दवा खाकर सो गए। जैसे-तैसे रात कटी।'

'कितने बड़े-बड़े बच्चे हैं! बेटी तो एमए में है न? बच्चे भी क्या सोचते होंगे?' मैंने कुछ-कुछ नैतिकतावादी अफसोस जताया।

'हाँ, हाँ, सब समझते होंगे। आजकल के इतने छोटे-छोटे बच्चे तक जानते हैं सब बातें। हमारा संटू जब पाँचवीं में था तभी बता देता था कि मम्मी, ये बच्ची बनेगी आगे चलकर इस फिल्म की हीरोइन। फिल्म शुरू होते ही... आप जानते हैं कौन हैं ये रचना?'

प्रभा की आँखों से लगता है कि अब वह मेरे मार्फत सक्सेना की प्रेम-कहानी की तह तक जाना चाहती है।

'मुझे लगता है, मैंने देखा है।' बहुत सावधानी से कदम बढ़ा रहा हूँ मैं। दोस्त के साथ दगा भी न हो और प्रभा भी विश्वासघात का आरोप न लगाए कि मुझे ये बातें क्यों नहीं बताते? जबकि हकीकत यह है कि कितनों की बताएँ और कितनी? और फिर इन बातों में कितनी सच्चाई होती है, कितनी अफवाह, कौन जाने! कई बार बात करनी-भर चटखारों के लिए काफी होती है।

'मुझे थोड़ा-थोड़ा याद पड़ता है दिल्ली कॉलिज ऑफ आर्ट में इसकी पेंटिग्स की प्रदर्शनी लगी थी। पेंटिंग्स बनाती है। कोई पेंटिंग्स का स्कूल भी चलाती है बच्चों का। जहाँ तक मैं समझता हूँ, खुद्दार महिला है। हमारे सक्सेना साहब शरीफ आदमी हैं।' मैं यार के बचाव में बढ़ना चाहता हूँ।

'शरीफ न होते तो इसके चक्कर में क्यों आते बेचारे? मिसेज सक्सेना बता रही थीं कि इसके आदमी ने इसे छोड़ा हुआ है? अकेले रहती है। इसका आदमी भी कोई कवि-ववि है।'

'इन्हें कैसे पता है? ' मैं जानते हुए भी प्रभा के मुँह से जानना चाहता हूँ। यदि यह बता दूँ कि मैं रचना को, उसके कारनामों को, इतने वर्षों से जानता हूँ तो यह संभावना भी तो बनेगी कि फिर अपने दोस्त के प्रेम-प्रसंग को कैसे नहीं जानते' प्रभा वैसे भी बड़ी शक्की स्वभाव की है।

'सुनो तो! कौशल्या गई थीं उसके घर। बड़ी परेशान रहीं ये उन दिनों। इन्होंने अपनी माँ को बुलवा लिया। भाइयों को खबर कर दी। 'मेरा भाई तो बहुत नाराज था कि जिस बहन के चार-चार भाई हों उनकी बहन की ऐसी बेकद्री हो। मैं दर्द से कराह रही हूँ... बड़े बुरे दिन थे वे, प्रभा। क्या बताऊँ, तुमने कभी फोन नहीं किया। तुम तो दिल्ली आती रहती हो। बच्चे स्कूल-कॉलेज निकल जाएँ और ये अपनी नौकरी पर... और वहाँ से... कभी दस बजे लौट रहे हैं, कभी ग्यारह। मेरी माँ ने इन्हें समझाया। ये बातें दुनिया को पता चलेंगी तो तुम्हारे खानदान तक को बट्टा लगेगा। कल को अपनी बेटी को ब्याहने जाओगे तो लोग थू-थू करेंगे। पर कोई असर नहीं। बाबाजी-से चुप बने रहते। खोए-खोए से कि कौशल्या! मैं तुमको कोई तकलीफ नहीं होने दूँगा। वे लोग किस्मत के मारे हैं। आसाम में बोडोलैंड वालों ने सारे बंगालियों को बाहर कर दिया है। ये भागकर दिल्ली चले आए हैं। फिर मैंने सोचा कि मैं ही जाकर उससे मिलती हूँ। उसे भी समझाती हूँ। मैंने फोन किया।'

'फोन नंबर कहाँ से लिया?'

'कहाँ से क्या? वह तो हर जगह लिखा था। नाम, पता, सब डायरी में। इनके पीए को भी पता है। उसने भी इशारे से डरते-डरते संकेत किया था कि आजकल बड़े उड़े-उड़े से, खोए-से रहते हैं हमारे साहब!'

प्रभा ने मेरी तरफ देखा, 'हैं न बेचारे सीधे! वरना कोई चालाक आदमी होता तो छुपा के रखता इन नंबरों, रूमाल को। और तो और, शादी-सिंदूर की कहता भला! लोग चुपचाप चलाए जाते हैं ऐसे संबंधों को।'

'छिपा के रखा तो था रूमाल। हरे वाला, बिना धोए, अनटच्ड्।' फिर हँसी छूटी।

'मैंने फोन किया।' मिसेज सक्सेना बताने लगीं। 'उसके बच्चे ने उठाया। बड़ी प्यारी-सी आवाज। दो बच्चे हैं इसके 12 साल और 14 साल के। मैंने पूछा - मम्मी है? मैंने बात की और कहा कि मैं आ रही हूँ - हाँ दीदी, आ जाइए।'

प्रभा मुस्कराए जा रही है 'दीदी' शब्द को कहते-कहते।

'मैं गई। बच्चों के लिए कुछ मिठाई भी ले गई। उन पेंटिंग्स को भी रख लिया जो इन्होंने पिछले दिनों बनाई हैं। इतनी बनाई हैं कि पिछले पाँच साल में भी नहीं बनाईं। सारा घर भर डाला है। कहते थे - मेरा कलाकार चरम पर है आजकल।' फिर बीच में रुककर पूछने लगीं, 'तुमने तो, प्रभा, देखी होंगी इनकी इधर की पेंटिंग्स? धूमीमल में

लगी थीं। मुख्यमंत्री ने उद्घाटन किया था। इधर की सभी पेंटिंग्स में तुमने देखा होगा, सुडौल ब्रेस्ट, एक दाँत किनारे का निकला हुआ। बड़ी-बड़ी आँखें। रंग सलेटी है या गेरुआ सभी का। एक नहाती पेंटिंग देखना, हू-ब-हू रचना से मिलती है। जब बनाई थी तब मैंने पूछा था। कुछ नहीं बोले। फिर बोले - कल्पना है कलाकार की। हमें तो ये पागल समझते हैं। रचनाजी ही हैं वो। इन पेंटिंग्स की तो इतनी तारीफ हुई है कि राजा रवि वर्मा के बाद किसी ने एक-से चित्रों में इतनी विविधता भरी है। रंगों की भी और रूपों की भी। इंप्रेशनिस्ट पेंटिंग्स की वापसी माना जा रहा है इन्हें।'

'दिखाना मुझे!'

'अनुराग तो इनके इतने गहरे दोस्त हैं। कमाल है, उन्होंने भी नहीं बताया। अनुराग तो उद्घाटन वाले दिन भी थे। मैं भी जबरदस्ती गई थी, वरना कह रहे थे कि क्या करोगी। मैं पूछूँगी अनुराग से, हमें इसीलिए नहीं बताते कि हम क्या समझेंगी पेंटिंग्स... तुम्हारी रचना, कल्पना की उड़ान! हम गँवार जो हैं! आपकी भी तो कोई रचना नहीं है? इसीलिए प्रभा को साथ नहीं लाते?'

'जरूर पूछना। मुझे किसी एक्जीबिशन में साथ नहीं ले जाते। कभी कोई बहाना, कभी कोई।'

'अब रचनाजी की सुनो! वो तो साफ नट गई कि मैंने तो कभी शादी, सिंदूर की बात ही नहीं की। मेरी तरफ से तो कुछ भी नहीं, दीदी! मैं ऐसा क्यों करूँगी? - दीदी! दीदी! ...मैं कहूँ तो क्या कहूँ। मुझे सारा गुस्सा इन्हीं पर आ रहा था। उसके बच्चे पानी लाए। चाय लाए। उसके माँ-बाप भी साथ रहते हैं। पर तब कलकत्ता गए थे किसी शादी के सिलसिले में। मुझे तो वो कहीं से ऐसी बौराई नहीं लगी जैसे कि ये थे। क्या पता छिपा रही हो, वरना इतने फोन क्यों करेगा कोई? और वह भी रात में?'

'अब तो नहीं कुछ?'

'ये तो मैंने नहीं पूछा। वैसे अब नहीं होगा। ये सब बातें थोड़ी देर के लिए होती हैं।' प्रभा गंभीर हो गई। 'मेरा मन उसे देखने का कर रहा है, तुम तो पहचानते हो न?'

'हाँ, हाँ, अच्छी तरह से! लेकिन मुझे ऐसी तो नहीं लगी थी कभी। एक बार सुना था कि उसने दास बाबू से कहा था कि घर आना और यह भी कि कभी भी आ सकते हो। आजकल मेरे माँ-बाप भी नहीं हैं। क्या मतलब है इस बात का कि कभी भी आना और मेरे माँ-बाप भी नहीं हैं!'

मैं भविष्य की आहटों से बचाव की मुद्रा में लगता हूँ। 'सक्सेना कितने सीधे हैं। इसी ने फुसलाया होगा और देखो, कैसे नट गई। अब तो इसका हस्बैंड भी साथ रहने लगा है। उस दिन पुस्तक मेले में दोनों साथ थे।'

'बताना मुझे भी।'

हम एक रेस्तराँ में बैठे हुए थे। साउथ इंडियन कैनारा कॉफी हाउस - प्रभा की पसंदीदा जगह। 'हम बड़े दिनों से कहीं गए भी नहीं हैं। ऐसा मन करता है, खूब-खूब लंबी यात्रा की जाए। बड़ी मोनोटोनस-सी हो गई है जिंदगी।' प्रभा ने अँगड़ाई ली।

बहुत दिनों के बाद सक्सेना साहब की कहानी के पाठ ने प्रभा को रोमांटिक बना दिया है।

'क्या आपको लगता है इस उम्र में भी प्यार हो सकता है**?** अब सक्सेना जी को ही देखो**!**'

न चाहते हुए भी मैंने चुप्पी तोड़ी, 'हो सकता है। क्यों नहीं हो सकता? नेहरू, नेपोलियन से लेकर हजारों-हजार किस्से हैं। मुझे नहीं लगता, उम्र का इससे कुछ लेना-देना है। प्रेम किसी कानून की किताब से न चलता है, न चलाया जा सकता है। दरअसल, प्रेम करना ताजगी से भरना है, युवा होना है। युवा होना प्रेम की गारंटी नहीं है। प्रेम होना युवा होने की गारंटी है। कया सक्सेना साहब को दोष दें और क्या रचना को? बस हो गया तो हो गया और गुजर भी जाएगा यूँ ही। हो सकता है, गुजर भी गया हो, बशर्ते लोग गुजर जाने दें। क्योंकि लोगों को जितना रस ताक-झाँक में आता है उतना किसी में नहीं, विशेषकर हमारे जैसे बंद समाज में, वरना जो अहसास जिंदगी में एक नया अर्थ, नई ऊर्जा, नया अंदाज भर दे, उससे पवित्र कौन-सी मानवीय भावना हो सकती है?'

प्रभा की आँखें मेरे चेहरे पर गड़ी थीं। 'अच्छा, बहुत बड़ी-बड़ी बातें सीख गए हो! तुम्हारी भी तो कोई 'रचना' नहीं है? कहीं रात को मुझसे कहो कहने के लिए कि 'मैं रचना हूँ, मैं रचना हूँ...' मिसेज सक्सेना कह रही थीं, इन आदमियों का कुछ पता नहीं चलता।'

'मैं गलत कह रहा हूँ। कोई भी कह सकता है, और प्यार क्या मुनादी करके किया जाता है?' प्रभा के चेहरे की गंभीरता भाँपकर मैंने तुरंत ठहाका लगाया, 'अरे, इस उम्र में कौन घास डालता है और किसे फुरसत है?'

बेयरा कॉफी रखकर चला गया।

'मुझे भी लगता है... हो सकता है।' कॉफी का घूट पीकर मानो प्रभा की चेतना जाग रही हो। वे गली-कूचे उन्हें याद आ रहे हैं जिन पर वे कभी गुजरी हैं। या गुजर रही हैं। 'मुझे तो यह भी लगता है कि प्यार में हर बार वैसा ही डर, वैसा ही रहस्य-रोमांच लगे जैसे कि पहली बार।'

अब मैंने प्रभा को शक की नजरों से तोला।

'उस दिन किरन बता रही थी कि आजकल टीवी पर एक सीरियल चल रहा है। उसमें आदमी अपनी औरत को बहुत प्यार करता है। पत्नी का नाम कमला है। उसे कैंसर हो जाता है तो आदमी पागल हो जाता है। सब कुछ बेच-बाचकर उसका इलाज कराता है। वह फिर भी नहीं बचती। 'कमला! कमला!' चिल्लाता रहता है। उसकी उम्र इतनी ही होगी जितनी सक्सेना साहब की है। साल-भर भी नहीं हुआ होगा कमला को मरे कि एक विधवा मिलती है उसे। सुधा नाम है उसका। वो तो उसमें ऐसा मस्त हुआ कि सब कुछ भूल गया। कहता है, 'सुधा ही सत्य है, सत्य ही सुधा है।' किरन कह रही थी कि उसने राय साहब को कहा कि सब पुरुष एक जैसे ही होते हैं, तुम भी भूल जाओगे, अभी जो किरन-किरन करते हो न!'

'राय साहब ही क्यों, किरन भी भूल जाएगी। सुधा भी तो विधवा थी। विधवा भी नहीं सही, एक स्त्री तो है। इसमें क्या स्त्री और क्या पुरुष!'

'बिलकुल, मैंने एक कहानी पढ़ी थी जिसमें साठ-सत्तर साल की विधवा तीर्थ के लिए वृंदावन जाती है। घर पर उसके नाती-पोते सभी हैं। वहाँ उसका इस उम्र में प्यार होता है। गलती से प्रेमी द्वारा उसके नाम की चिट्ठी उसके बेटे-नातियों को मिल जाती है। वे ऐसे नाराज होते हैं कि फिर वह बुढ़िया घर ही नहीं आती। उसी के साथ रहने वृंदावन चली जाती है।'

'देखो, कोई यकीन कर सकता है इस पर! लेकिन यही सच्चाई है। यूरोप में तो यह जिंदगी का हिस्सा है। सक्सेना साहब को मैं बहुत करीब से जानता हूँ। बहुत भले आदमी हैं। बस हो गया थोड़ा-बहुत साथ, मुलाकात होते-होते। आखिर हैं तो हम सब मनुष्य ही। हाड़-मांस के बने। पत्थर तो नहीं हैं। जानवर, पेड़-पौधे तक से जुड़ाव हो जाता है।'

...मीरा की आँखों ने फिर कब्जे में ले लिया है... 'तुम यहाँ आती हो। कभी किसी ने कुछ कमेंट किया तो?'

'करने दो, मैं नहीं डरती किसी से। मेरी मरजी।'

'मैं तो डरता हूँ।'

मीरा जोर से खिलखिलाई।

उस हँसी ने सारा डर सोख लिया।

धीरे-धीरे कितनी पजैसिव होती जा रही है मीरा। मजाल कि मैं किसी से बात भी करूँ? क्या है यह सब? अधिकार प्रेम की पीठिका है, प्रक्रिया है या प्रस्थान-बिंदु?

कैसी विचित्र स्थिति है? मीरा भाती भी है और भयभीत भी करती है। न भागे बनता, न आगे बढ़ने का साहस होता।

नसें चटकने लगती हैं इस द्वंद्व में। हिमाद्रि महाराणा ठीक ही कहता है - 'मध्यवर्गीय विडंबना यही तो है। अर्द्धसत्य के इसी द्वंद्व में उम्र समाप्त करने को अभिशप्त!'

बाँसों के झुरमुटों से छनकर फुहार आई तो प्रभा खिसककर और नजदीक आ गई।

उसने अपनी ठुड्डी मेरी हथेली के सहारे मेज पर टिका रखी है। मैं हाथ पर दबाव तो महसूस कर रहा हूँ, पर वह ऊष्मा नहीं जो मीरा की उँगली छूने-भर से हो जाती है। आखिर क्या है यह सब? नवीनता का मोह? अनजान क्षितिजों की झलक? उस फल को ही खाने की आदिम इच्छा जिसे खाने के लिए मना किया गया हो। इधर-उधर नजर दौड़ाकर मैंने प्रभा के सिर पर हाथ फिराया। कमर पर हाथ गया। बढ़ते-बढ़ते वक्ष पर भी। फिर भी कुछ नहीं। क्यों कुछ नहीं हिलता मेरे अंदर! प्रभा देखने में भी उतनी ही सुंदर बनी हुई है जितनी बीस साल पहले थी। क्यों? क्यों? जबकि मीरा की स्मृति-भर से ही शरीर एक रोशनी में नहा उठता है...

प्रभा की आँखें बंद हैं, लेकिन उसमें भी वह जुंबिश नजर नहीं आ रही। क्या वह भी कुछ-कुछ वैसा ही सोच रही है?

कौन जाने मीरा भी वैसा ही सोचती हो - मुझे और अपने पति को लेकर!

पता नहीं, सक्सेना साहब की कहानी के आर-पार हम एक-दूसरे को समझा रहे थे या खुद को समझ रहे थे - उलट-पलटकर।